मगसिर शुक्ल १४, शनिवार, दिनांक २८-१२-१९७४, श्लोक-८-९-१०, प्रवचन-१८

... ज्ञान है। उसे मानता नहीं। और यह शरीर मैं हूँ, ऐसा मानता है। यह देह जड़। जाननेवाला भिन्न, तथापि उससे भिन्न चीज़ है, उसे अपनी मानता है। यह मूर्खता अनादि की है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, पोपटभाई! आहाहा! है?

बहिरात्मा,... पहला शब्द है। बहिर् अर्थात् कि चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा शरीर, वाणी, मन से भिन्न है और वह कर्म से भी भिन्न है अन्दर। वास्तव में तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव होते हैं, वह भी एक विकल्प और आकुलता के विकारी भाव हैं। उनसे भगवान आत्मा अन्दर जरा भिन्न चीज़ है। समझ में आया? यह आत्मा का ऐसा स्वरूप है, ऐसा कभी इसने जाना, माना नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि यह **बहिरात्मा, नर-नारकादि पर्यायों को...** नर अर्थात् यह मनुष्य, नारकी अर्थात् नीचे गति है नारकी की। यह माँस और शराब को सेवन करते हैं, वे मरकर नरक में जाते हैं। नीचे नरक योनि है। वहाँ अनन्त बार उपजा है। स्वयं क्या चीज़ है, उसके भान बिना। सम्यग्दर्शन बिना कहो या सम्यग्दर्शन में उसका विषय जो पूर्णानन्द प्रभु उसकी अस्ति के भान बिना, उसकी मौजूदगी के भान बिना... आहाहा! इसने इस शरीर को अपना माना। क्योंकि है तो चीज़ सही। अब जिस प्रकार है, उस प्रकार से ख्याल में न आयी, तब जो इसमें नहीं, उस चीज़ को मैं हूँ, ऐसा अपना अस्तित्व वहाँ स्वीकार किया। न्याय समझ में आता है? स्वयं आत्मा तो अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान है।....

इस देह में रहा हुआ तत्त्व जिसे चैतन्य कहते हैं, जीव कहते हैं, आत्मा कहते हैं, वह तो अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति वीर्य की और ज्ञान से भरपूर पदार्थ है। आहाहा! वह ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा है। ज्ञान का आनन्द और ज्ञान का सुख, उससे भरपूर यह आत्मतत्त्व है। इसकी जिसे अनादि से खबर नहीं वह, यह शरीर वह मैं - ऐसा वह मानता है। शरीर निरोगी तो कहे मैं निरोगी। शरीर रोगी तो कहे मैं रोगी। मोहनलालजी! कुछ पैसे हुए पाँच-पच्चीस लाख तो कहे मैं पैसेवाला। निर्धन हो, तब कहे, अरे! मैं तो

निर्धन। यह सब अज्ञानदशा से मानी हुई भ्रम की भ्रमणा की बातें हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **नरनारकादि...** नर अर्थात् मनुष्य। यह देह है, वह जड़ है यह तो। यह तो मिट्टी है। यह कहीं आत्मा नहीं। आहाहा! इसी प्रकार नरक का शरीर है नारकी का, वह जड़ है। इसी प्रकार स्वर्ग का देव है, वह भी शरीर जड़ है और तिर्यंच तो दिखता है हाथी, घोड़ा शरीर है, वह तो मिट्टी जड़ है। परन्तु अपना अस्तित्व जिस प्रकार से है, उस प्रकार से सत्ता के स्वीकार में आया नहीं, इसलिए अपना अस्तित्व कहीं तो मानना पड़े इसे! न्याय समझ में आया? जिस प्रकार जिस स्वरूप से भगवान आत्मा, वह स्वयं आत्मा भगवान, हों! भगवान हो गये, वे भगवान में रहे। यह जिस प्रकार आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द अतीन्द्रिय सुख के भण्डार से भरपूर प्रभु है। आहाहा! अरे! कभी इसने सुना भी न हो। समझ में आया? ऐसे अस्तिवन्त—सत्तावन्त—होनेपनेरूप जिस प्रकार से आत्मा है, उस रीति के अज्ञान के कारण, यह मैं हूँ, ऐसा न मानकर शरीर, वाणी की क्रिया यह चालू है, बोलता हूँ, वह सब मेरी क्रिया है, ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया? आहाहा! यह तो १९वें श्लोक में आता है न? सवेरे सज्झाय आ गयी।

जो यह शरीर, जो यह उपदेश चलता है, वह तो वाणी का-जड़ का है। और जो विकल्प उठा है, वह राग है। कहते हैं कि जो कोई प्राणी उपदेश में मैं पर को उपदेश करता हूँ, वह मैं हूँ, (ऐसा मानता है)। क्योंकि वाणी है, वह जड़ है। वाणी तो जड़ आवाज है, वह कहाँ चैतन्य है? और अन्दर विकल्प उठा है राग, वह विकारभाव है। वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं है। वह विकार और उपदेश की क्रिया मैं उसे करता हूँ। आहाहा! शान्तिभाई! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो दूसरी बात है अनादि काल से... तीर्थंकर परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी प्रभु ने जो आत्मा कहा, उसकी इसे खबर नहीं।

नर-नारकादि पर्यायों को ही अपनी सच्ची अवस्था मानता है। है? यह कथा नहीं है। इन शब्दों में कितना भरा हुआ है। समझ में आया? प्रभु चैतन्यद्रव्य का स्वभाव, यह कहेंगे अभी, उसे भूलकर अनादि अज्ञानी देव हों, नारकी हों, पशु हों,

सेठिया हों, अरबोंपति, वे सब अज्ञानी अनादि से ऐसा मान रहे हैं कि शरीर, वह मैं हूँ। उपदेश में तो यहाँ तक, भाई! लिया कि मैं पागल हूँ। ऐई! यह विकल्प और वाणी मैं हूँ तो यह मिथ्यात्व का पागलपन है। समझ में आया? परन्तु मिथ्यात्व का पागलपन न हो, वस्तु का भान हो कि मैं चैतन्य हूँ, तथापि उपदेश का विकल्प जो उठता है, कहते हैं... आहाहा! वह चारित्र दोष का पागलपन है। आहाहा! यह तो मिथ्यात्व का पागलपन अभी वर्णन करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

देहदेवल में चैतन्य भगवान भिन्न तत्त्व पड़ा है। जिसमें पुण्य और पाप के विकल्प और राग की वृत्ति भी जिसमें नहीं। ऐसा चैतन्यबिम्ब प्रभु है अन्दर। आहाहा! उसकी जिसे खबर नहीं, वह शरीरादि की दशा को अपनी अवस्था मानता है। मैं जवान हूँ, मैं वृद्ध हो गया, मैं बाल हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ। पोपटभाई! ऐसा बहुत कठिन काम! उसका अस्तित्व तो चैतन्य भगवान अनन्त आनन्द से सम्पन्न है। वह तो सच्चिदानन्द -स्वरूप सिद्धस्वरूप है। जो सिद्ध भगवान हुए, वे कहाँ से हुए? वह दशा कहीं बाहर से आती है? अन्दर में आत्मा के स्वभाव में पूर्णानन्द और पूर्ण शुद्धता पड़ी है। आहाहा! उसका अन्तर में भान करके, एकाग्र होकर उस सिद्ध पर्याय की प्राप्ति वस्तु में है, उसमें से आती है। प्राप्त की प्राप्ति है। जो उसमें है, उसमें से आती है। उसे ऐसा न जानकर... आहाहा! इस शरीर की अवस्था, राग की अवस्था, उस वाला मैं हूँ, यह सब भ्रम और अज्ञान है। उसे परमात्मा बहिरात्मा, मिथ्यादृष्टि चार गति में भटकने के भाववाला (कहते) हैं। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! क्या करना? यह सब छह लड़के, पैसे करोड़ों रुपये।

मुमुक्षु : लड़के लड़के में, पैसे पैसे में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे पैसे में। यह तो अनुभव हो गया था न उस समय। आहाहा!

प्रभु! तू कौन है, भाई! तुझे खबर नहीं। तेरी जाति की जाति को तूने भात पाड़े बिना जो तुझमें नहीं, ऐसी कुजात यह शरीर, वाणी, मन, पुण्य और पाप के भाव, वे तेरी जाति में नहीं। आहाहा! वे तो भिन्न जाति की चीज़ है, भगवान! उसे मैं यह शरीर मेरा

और शरीर से काम करूँ, चौबीस घण्टे धन्धे में श्रम लेता हूँ, देह का बराबर सदुपयोग करता हूँ जड़ का। अरे! भगवान! यह शरीर जड़ है, इसका उपयोग तू क्या करेगा? आहाहा! इस शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, इस शरीर की अवस्था ही मैं हूँ, ऐसा अज्ञानी ने अनादि से मान रखा है। आहाहा! है?

आत्मा का वास्तविक स्वरूप उनसे भिन्न,... है। देह, यह मिट्टी की यह अवस्थायें, उनसे प्रभु अन्दर आत्मा की वास्तविक चीज़ तो इनसे भिन्न है। समझ में आया? घी का घड़ा होता है घड़ा, परन्तु उस घड़े से घी तो भिन्न चीज़ है। या दोनों एक हैं? इसी प्रकार यह (शरीर) मिट्टी का घड़ा है। प्रभु चैतन्यस्वरूपी आनन्दकन्द है, वह चीज़ इस देह के घड़े से अन्दर भिन्न है। उसे सुनने की गरज कहाँ है? मर गया अनादि काल से। वास्तविक चैतन्य के भान बिना चौरासी के अवतार में भटकता-रुलता कहीं कोई शरण नहीं। जहाँ शरण है, उसे पहिचानता नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **आत्मा का वास्तविक स्वरूप उनसे...** देह की क्रिया यह हिलना, चलना, बोलना, यह सब, इनसे तो भिन्न है। यह तो जड़ है। **कर्मोपाधिरहित...** है। भगवान स्वरूप अन्दर है। जड़कर्म है, वह तो उसमें अभाव है। इस अँगुली में इस अँगुली का अभाव है, इस अँगुली में इस अँगुली का अभाव है। इस अँगुली में इस अँगुली का भाव है। इसी प्रकार आत्मा आत्मा के भाव से है, वह कर्म के भाव से रहित है। आहाहा! कैसे जँचे लोगों को? आहाहा! धर्म करो, धर्म करो। परन्तु क्या धर्म? कौन करे? धर्म कैसे होता है? समझ में आया?

कहते हैं **कर्मोपाधिरहित,...** चैतन्यदल शुद्ध। आहाहा! पानी का कलश होता है, उस कलश से पानी भिन्न है। या कलश और पानी दोनों एक है? इसी प्रकार चैतन्यरस आत्मा, समझण का पिण्ड प्रभु चैतन्यरस आत्मा और इन देह के रजकणों से तो अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! मोहनलालजी! कब भिन्न है? अभी। यह माना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : देह भिन्न है, वह पृथक् होकर चला जाता है। वह तो मरते

समय, देह छूटकर हं... हं... होता। जाओ। परन्तु इससे देह और आत्मा एक है अभी? और इसलिए कहते हैं, मरते हुए भी कि यह जीव गया। शरीर गया, ऐसा कहते हैं? वापस गया। और यह काठियावाड़ी भाषा में कहते हैं। वापस दूसरा अवतार धरेंगे मरकर। अरेरे! जाति को जाने बिना यह जड़ की जाति को अपना मानकर उसका अहंकार करके, जो कर्म की उपाधि से रहित प्रभु अन्दर है... आहाहा! '**शुद्ध**' है, पवित्र है। भगवान आत्मा तो आनन्दस्वरूप है, ज्ञान की मूर्ति है, पवित्रता का पिण्ड है, वह शुद्ध है। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव पुण्य, वह अशुद्ध है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोग का इनका जो भाव, वह पापरूपी अशुद्धता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह पुण्यरूपी अशुद्धता है। आहाहा! दोनों अशुद्धता से प्रभु भिन्न है। इसमें धन्धे के कारण तो कुछ सूझा नहीं था, मोहनलालजी! कमाओ... कमाओ... दो, पाँच, पचास लाख हुए। धूल हुई, इसलिए मानो... ओहोहो! मानो मैंने कमाया। ऐ... पोपटभाई! आहाहा! है न यह मलूकचन्दभाई! नहीं जाडा बैठे? इनके पुत्र हैं मुम्बई में, तुमने नाम सुना है? पूनमचन्द मलूकचन्द। यह मोटे बैठे न पीछे? पूनमचन्द मलूकचन्द चार-पाँच करोड़ रुपये इनके पास हैं। इनके पुत्र के पास। मुम्बई में बड़े बाईस-बाईस मंजिल के मकान बनाते हैं। पूनमचन्द मलूकचन्द। यह मलूकचन्दभाई। इनका हक नहीं परन्तु, हों, वहाँ उसमें। आहाहा! अरे! किसका हक भाई? किस चीज़ में तू है, वह तेरा हक वहाँ लागू पड़े? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भगवान अन्दर देह की अवस्था को 'मैं' माने परन्तु वह तू नहीं, भाई! आहाहा! तुझसे भिन्न चीज़ पड़े, वह तेरी नहीं। बराबर है? लॉजिक से तो (कहा जाता है)। अब तो भिन्न पड़ जाते हैं। इसका नाश हो जाता है। आहाहा! और वास्तव में तो कर्म भी भिन्न पड़ जाते हैं। और वास्तव में तो पुण्य और पाप के मैल भाव भी भिन्न पड़ जाते हैं। आहाहा! भिन्न पड़े, वह तू नहीं और तू वे भिन्न पड़ें, उनमें आया नहीं। अरेरे! मूल की खबर नहीं होती और सर्वत्र हाँक रखे हैं। दुनिया के चतुर और दुनिया के होशियार। पोपटभाई! हसमुखभाई बहुत होशियार कहलाते हैं तुम्हारे घर में। इनके पुत्र चतुर है। अपने यह नहीं? यह अक्षर का... क्या कहलाता है? मशीन। इनका बड़ा पुत्र वहाँ इटली न? इटली। इटली गया था। छह लड़के करोड़ोंपति। एक लड़का

गया था और बीस हजार खर्च किये। २९ हजार की मशीन आयी है और १९ हजार के टाईप को यह सब मेहनत इसने की है। हों! बात की तो अपने को खबर भी नहीं। यह कहना 'ये लाये' यह भी व्यवहार की बातें हैं। यह चीज़ इस काल में स्वयं यहाँ आने की थी ही। समझ में आया? क्योंकि उस जड़ की चीज़ में वह क्रियावती नाम की शक्ति है कि जिसके कारण वह रूपान्तर होकर, बदलती हुई जहाँ जाना हो, वहाँ जाती है। आहाहा! कठिन काम, भाई!

यहाँ कहते हैं, भगवान तो शुद्धस्वरूप है न, प्रभु! वह तो चैतन्यरूप है न! **चैतन्यमय...** है। चैतन्यवाला, ऐसा नहीं। जाननमय, जाननमय। जैसे शक्कर मिठासमय। मिठासवाली, इसमें भेद पड़ जाता है। परन्तु शक्कर मिठासमय है। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यवाला, ऐसा नहीं। चैतन्यमय है। समझ में आया? ऐसी बातें। यह कथा। ऐसी धर्म कथा। वे ऐसा कहें, दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो, यह मन्दिर बनाओ। तुम्हारे भभूतभाई ने मन्दिर बनाया न? वहाँ आनेवाले हैं न, सोलह दिन रहनेवाले हैं। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी का मुहूर्त है। आ गये। यहाँ आ गये हैं। भभूतभाई आ गये हैं। पहले... आये थे, तब उनको बुखार आया था। जुगराजजी आये। तब सब विनती करने के समय उन्हें बुखार आ गया। उनके छोटे भाई आये थे। और फिर स्वयं आ गये। फिर से आ गये। भभूतमल। आठ लाख डाले हैं उसमें-मन्दिर में। चार लाख जुगराजजी ने। जुगराजजी स्थानकवासी हैं। ... दिगम्बर मन्दिर बारह लाख का बनाया है, बैंगलोर। यहाँ से जानेवाले हैं। चैत्र शुक्ल तेरस का वहाँ मुहूर्त है। सोलह दिन वहाँ रहनेवाले हैं। वह यहाँ कहते हैं कि आठ लाख मैंने खर्च किये। वह तो जड़ है। मैंने मन्दिर बनाया, वह तो परवस्तु है। परवस्तु को कौन बनावे और कौन रचे? भारी गजब बातें, बापू! ऐसी। समझ में आया? क्योंकि वह तो चैतन्यमय वस्तु है। आत्मा तो चैतन्यमय है। वह जड़मय नहीं। जड़ से तो भिन्न है। समझ में आया?

टंकोत्कीर्ण, एक, ज्ञाता... आहाहा! आम जैसी चीज़ है, वैसी अन्दर शाश्वत् वस्तु है। **एक, ज्ञाता-दृष्टा है,...** जाननेवाला-देखनेवाला भगवान जगत की आँखें हैं। जगत, वह ज्ञेय है; भगवान आत्मा उसका ज्ञाता—जाननेवाला है। ज्ञेय से ज्ञाता चीज़ भिन्न है। ज्ञाता ज्ञेय में नहीं, ज्ञेय ज्ञाता में नहीं। आहाहा! ऐसा यह कैसा धर्म? बापू! तुझे

खबर नहीं धर्म की, भाई! यह आत्मा क्या चीज़ है, वह इस प्रकार जानी जा सकती है। अन्दर जाननेवाला-देखनेवाला, यह आत्मा है। वह एकरूप है, ऐसा कहना है। यह कहा न?

एक, ज्ञाता-दृष्टा है, अभेद्य है,... अर्थात् क्या कहा? वस्तु है अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति आदि स्वच्छता, शुद्धता चैतन्यमय। उसमें यह वस्तु और वस्तु की शक्तियाँ ज्ञान-आनन्द ऐसा भी भेद नहीं। अभेद वस्तु है। शक्कर में मिठास और सफेदी से शक्कर एकरूप है। शक्कर में मिठास और सफेदाई से शक्कर एकरूप है। इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानमय से एकरूप है। कभी सुना हो, मोहनलालजी! इसलिए सब... कोई भी कहाँ जगत की मजदूरी के कारण निवृत्ति कहाँ? निवृत्त कहाँ से? नहीं, बाबूभाई! मजदूरी-मजदूरी हम तो कहते हैं, बड़ी मजदूरी है। बड़े मजदूर यह सब करोड़पति और अरबोंपति। यह चौबीस घण्टे में दस घण्टे मेहनत करते हैं। ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा लाओ...कितने पैसे हुए? आवक कितनी हुई? उगाही कितनी है? पूँजी कितनी बाकी? ऐसे विकल्प के जाल करके जीव को चैतन्य को इसने मार डाला। अर्थात् क्या? इस प्रकार से चैतन्य है ज्ञानमय, शुद्धमय, अभेद, इस प्रकार उसका जीना अर्थात् टिकना है। ऐसा टिकना न मानकर, राग और शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, इसलिए मैं टिक रहा हूँ, तो वह टिकते तत्त्व का निषेध किया तो वही उसकी हिंसा है। टकता भाषा समझते हो गुजराती? टिकता तत्त्व अर्थात्? जो है। यह तो भिन्न जाति है, बापू! दुनिया की कथा दया पालो और व्रत पालो, वह जिसे एकदम समझ में आये। इसमें कुछ है नहीं समझने का।

यहाँ तो कहते हैं कि वह दृष्टा और ज्ञाता अभेद चीज़। सत्ता महाप्रभु का स्वीकार नहीं करके, देह की क्रिया वह मैं, राग, वह मैं—उसके स्वीकार में यह परमानन्द की मूर्ति चैतन्य का टिकना जो अस्ति है, उसका इसने निषेध किया है। बस! निषेध किया, यही हिंसा। आहाहा! है, यह नहीं। नहीं, वह मैं। बात समझ में आती है कुछ? भारी सूक्ष्म बातें, बापू! यह तो लॉजिक से तो बात चलती है, परन्तु अब समझने का तो इसको है न? वस्तु है चैतन्यस्वरूप ज्ञानमय, आनन्दमय, शान्तमय वीतरागस्वरूप से विराजमान है। ऐसे तत्त्व की जो अस्तिवाली चीज़ है, वह मैं नहीं। अर्थात् इतना मैं नहीं,

अर्थात् उसका जो जीवन ऐसा पूर्ण है, वह नहीं। (ऐसा मानना) वही हिंसा है। वही मिथ्यात्व के भाव और जीव ने अन्दर में हिंसा की। आहाहा! पर की हिंसा कौन कर सकता है? पर की दया कौन पाल सकता है? बापू! यह बातें सूक्ष्म, भाई! समझ में आया? ऐसे जीव को इसने अभेद है, उसे नहीं माना। आहाहा!

अनन्त ज्ञान तथा अनन्त वीर्य से युक्त है... अनन्त जानना जिसका स्वरूप है, जानना जिसका स्वरूप है, उस स्वरूप की हद नहीं। जानना जिसका स्वभाव है, उस स्वभाव की मर्यादा नहीं। जिसका जानना स्वभाव, वह अनन्त है। आहाहा! **तथा अनन्तवीर्य...** वह पूर्णानन्द की अनन्त शक्तियों को टिका रखकर पूर्ण शुद्ध की रचना करे, ऐसा अनन्त वीर्य का नाथ आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ ने केवलज्ञान में इस आत्मा की चीज़ की इतनी महिमा देखी है। समझ में आया? आहाहा!

और अचल स्थितिरूप है... अचल स्थिति। ध्रुवपना है, वह कभी चलित नहीं होता। नित्यानन्द प्रभु, नित्यानन्द प्रभु, नित्य ज्ञानस्वरूपी प्रभु, उसका उसके स्वरूप में से कभी चलित होना नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! हमारे धर्म समझना है। परन्तु वह धर्म ऐसे होगा। धर्म करनेवाला, धर्म करना है तो दशा में-पर्याय में-अवस्था में, परन्तु वह करनेवाले का तत्त्व कैसा, कितना है? उसकी समझ बिना तू धर्म कहाँ करेगा? आहाहा!

कहते हैं, **अचल स्थितिरूप है—ऐसा भेदज्ञान (विवेकज्ञान) उसको नहीं होता;...** किसे? कि जिसे यह शरीर की अवस्था वह मैं, यह भाषा चलती है, वह मैं, ऐसी जिसकी श्रद्धा है और उससे भिन्न मेरा अनन्त ज्ञानमय तत्त्व है, ऐसा विवेक और भेदज्ञान उसे है नहीं। ध्यान रखना, भाई! यह तो शब्द शब्द तोलकर इतने होते हैं। आहाहा! जो यह शरीर को, वाणी को, मन को अपना माने, वह अवस्था-दशा मेरी है - ऐसा माने, उसे उस दशा से भिन्न अनन्त ज्ञान-दर्शनवाला तत्त्व, उसे भेदज्ञान से जानने में आता नहीं। यह उसे ही अपना मान रहा है। आहाहा! कहो, मलूकचन्दभाई! मुम्बई में तो झपाटा बजता हो। मोटरें चलती हों और कुत्ते की भाँति भौंकते हों। ऐई... ऐसा करो, ऐई... ऐसा करो। घोड़े की भाँति दौड़ना।

मुमुक्षु : एक रह गया, गधे की भाँति।

पूज्य गुरुदेवश्री : गधे की भाँति। आहाहा! मोहमयी नगरी कही है न?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बात सत्य। श्रीमद् ने कहा है न, मोहमयी नगरी। आहाहा! मोहमयी-मोहमयी। राग... राग... राग... द्वेष, उसमें ही तत्पर रहा है, यह जीव। ओहोहो! भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा, जाना और कहा, इसकी उसे खबर नहीं होती। जगत के चतुराई की बातें करे। मानो देव का पुत्र उतरा। इसका ऐसा होता है और इसका ऐसा होता है। आहाहा! परन्तु तू कौन है? कहाँ है? कैसे है? खबर है?

मुमुक्षु : अमुक का पुत्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इनका पुत्र, यह मेरी माँ, इसका मैं पिता, यह मेरी स्त्री, इसका मैं पति, यह मेरा मकान और इसका मैं स्वामी, यह मेरे पैसे और मेरे कमाये हुए। लो, यह मैं। आहाहा! प्रभु भूला है, यह दीवार भूला है, हों! देखना चाहिए बाहर, उसके बदले दीवार में ऐसा रास्ता देखा और वहाँ भागा। वहाँ दीवार आड़े आयी। चैतन्य भगवान शान्त का सागर है। पूर्ण ज्ञान से भरपूर पदार्थ है। उसने शरीर की, वाणी की अवस्था को अपनी मानकर, उससे भिन्न नहीं माना। वही मैं हूँ, ऐसा माना। आहाहा! **इस कारण वह संसार के परपदार्थों में...** संसार के परपदार्थों—शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, यह सब पर है यह तो । इसके कहाँ थे? आहाहा! **तथा मनुष्यादि पर्यायों में...** मनुष्यादि शरीर की अवस्थाओं में **आत्मबुद्धि करता है—उन्हें आत्मा मानता है।** लो! आहाहा!

जीव, जिस-जिस गति में जाता है,... जीव जिस-जिस गति में जाता है। मनुष्यगति में, नारकी की गति में, पशुगति यह घोड़ा, गाय और स्वर्गगति। **उस-उस गति के अनुकूल भिन्न-भिन्न स्वांग धारण करता है।** आहाहा! मनुष्य का स्वांग यह देह जड़ ऐसा, नारकी का शरीर ऐसे कुबड़ा, रोगी, दुःखी। यहाँ से मरकर राजा हो न बड़े? करोड़पति लोग और राजा मरकर वहाँ नरक में पार्ललियामेंट घढ़ाता है। समझ में

आया ? लोहे का गोला भारी हो और पानी ऊपर रखो तो कहाँ जाये ? इसी प्रकार जिसने आत्मा के भान बिना बड़े पाप किये हों। हिंसा, माँस, शराब, शिकार ऐसे लम्पटी मरकर नीचे नरक में जाते हैं। वह नरक की गति में जाये, तब मैं नारकी हूँ—ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! मनुष्य की गति में आया तब मैं मनुष्य हूँ, ऐसा मानता है। देवगति में गया तब मैं देव हूँ, ऐसा मानता है। आहाहा! है ?

उस गति के अनुकूल... अर्थात् उस गति के योग्य। **भिन्न-भिन्न स्वांग धारण करता है। वे स्वांग, अचेतन हैं...** शरीर, वाणी, मन सब अचेतन वेश है। वह कहीं चैतन्य का वेश नहीं। आहाहा! **जड़ है...** यह तो सब जड़ है। **क्षणिक है।** क्षण-क्षण में पलटती चीज़ आत्मा के सम्बन्ध बिना की चीज़ है यह तो। आहाहा! **उन स्वांगों को धारण करनेवाला जीव, उनसे भिन्न शाश्वत ज्ञानस्वरूप चेतनद्रव्य है। अज्ञानी को अपने वास्तविक स्वरूप का भान नहीं; इस कारण उस बाह्य स्वांग को ही जीव मानकर, तदनुसार वर्तन करता है।**

अब यह मोक्षमार्गप्रकाशक का पेरेग्राफ है न ? मोक्षमार्ग। टोडरमलजी का कथन है। टोडरमलजी। मोक्षमार्गप्रकाशक पुस्तक है। मोहनलालजी! मोक्षमार्गप्रकाशक देखा है ? नाम सुना नहीं होगा। मोक्षमार्गप्रकाशक टोडरमलजी की पुस्तक है। टोडरमल हो गये हैं। उन्होंने बहुत सरस पुस्तक बनायी है। मोक्षमार्गप्रकाशक। गृहस्थी थे। बहुत ही शास्त्रों में से दोहन करके, दोहन करके बनाया है। उसका आधार देते हैं।

'**अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक,...** कहते हैं कि यह तो भगवान आत्मा तो अमूर्त है। उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। अमूर्तिक प्रदेश। असंख्य प्रदेश हैं वे। साँकल होती है न ? सोने की साँकल। साँकल में जैसे मकोड़ा होते हैं न मकोड़ा ? हजार मकोड़े की साँकल। यह साँकल समझते हो ? तुम्हारे क्या कहते हैं ? साँकली हमारे तो कहते हैं। वह हजार मकोड़े की हो, उसी प्रकार आत्मा असंख्य प्रदेशी आत्मा है। जैसे हजार मकोड़े की पूरी साँकल और मकोड़ा मकोड़ा एक-एक भिन्न है, उसी प्रकार भगवान में असंख्य प्रदेश हैं, आत्मा में अन्दर। एक रजकण रखो, रजकण-पॉईन्ट यह अन्तिम टुकड़ा। यहाँ रखो, इतनी जगह को वहाँ प्रदेश कहते हैं।

यहाँ दूसरा प्रदेश, तीसरा प्रदेश, चौथा प्रदेश, ऐसे असंख्य प्रदेश आत्मा है। असंख्य प्रदेश-देशवाला आत्मा है, ऐसा कहते हैं। वह समझे नहीं, यह कहते हैं।

अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज,... श्रीमद् में आता है एक। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन...' मुझे यहाँ अटकना है। यह तो सब खबर है न फिर। शुद्ध है भगवान आत्मा, बुद्ध है—ज्ञान की मूर्ति है और चैतन्यघन है। वह प्रदेश है। समझ में आया? आत्मसिद्धि देखी है? श्रीमद् राजचन्द्र की। आत्मसिद्धि देखी नहीं? ...याद नहीं होगी। वह गुजराती हुआ है। गुजराती में है। ३५ वर्ष पहले (संवत्) १९९५ में उसका व्याख्यान हुआ था। गुजराती में। बहुत सरस है। १९९५ में राजकोट चातुर्मास था न? तब गाँधीजी व्याख्यान में आये थे। मोहनलाल गाँधी, नहीं? कस्तूरबा, वे देसाई, उनके साथ इकट्ठा था न वह? महादेव देसाई। ये सब व्याख्यान में आये हुए हैं। (संवत्) १९९५ की बात है। ३५ वर्ष पहले, ३६ वर्ष पहले। उस समय का व्याख्यान लिखा हुआ है, बहुत सरस। पाँचेक हजार, छह हजार पुस्तकें प्रकाशित की हैं। थोड़ी रखी है। यह आत्मसिद्धि बनायी है श्रीमद् राजचन्द्र ने। १४२ श्लोक। उसमें यह श्लोक है।

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम,
दूसरा कितना कहें कर विचार तो पाम।

शुद्ध है, भगवान आत्मा पवित्र का पिण्ड है, भाई! उसमें मैल नहीं। आहाहा! पानी में मैल होता है, वह पानी नहीं। पानी में कादव का मैल दिखता है, वह पानी नहीं। पानी तो निर्मल है। उसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध निर्मल है और बुद्ध है—ज्ञानस्वरूप है। चैतन्यघन है। घन अर्थात् असंख्य प्रदेश का पिण्ड है। यह प्रदेश कहे वे। यह सुना न हो। जय भगवान-नारायण। असंख्य प्रदेश क्या और यह क्या बोलते हैं? तत्त्व की बात ही पूरी गुम हो गयी है और थोथे ऊपर के रह गये। यह क्रिया और यह क्रिया और यह क्रिया। आहाहा!

कहते हैं कि **असंख्य प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध...** प्रसिद्ध है। आत्मा ऐसा, वह प्रसिद्ध है। **ज्ञानादि गुणों का धारक,...** जानना, आनन्दादि शक्ति का धारक। आहाहा! **अनादिनिधन...** अनादि अ-आदि, अ-निधन ऐसा शब्द लेना। अण-आदि, अ-निधन।

आदि नहीं और निधन अर्थात् मृत्यु नहीं-अन्त नहीं। अनआदि-अनिधन। निधन अर्थात् अन्त। अ-निधन। आदिरहित और अन्तरहित। समझ में आया?

एक व्यक्ति आया था। बड़ा व्यापारी था। २०-२५ लाख का आसामी था। उसे दुकान करनी होगी। आया था। यहाँ तो बहुत आते हैं न जवान-बुवान। उससे मैंने इतना पूछा, यह आयुष्य गिना जाता है ५०-६०-७० (वर्ष), वह शरीर का या आत्मा का? कि मुझे कुछ खबर नहीं। यह २५ लाख का आसामी। बड़ा धन्धा। जामनगर में दुकान है। यहाँ आया था। आवे तो सही, सब आते हैं। कहा, यह शरीर का आयुष्य कहलाता है, स्थिति कहलाती है कि ६० वर्ष का, ७० वर्ष की यह शरीर की या आत्मा की? आत्मा तो अनादि-अनन्त है। वह तो शरीर की स्थिति की बातें चलती है। ५० वर्ष का, ६० वर्ष का, धूल का। परन्तु दुनिया कमाने और भोग के कारण निवृत्त कहाँ है? क्या चीज़ है, उसे समझने के लिये निवृत्ति कहाँ मिले? मारने के कारण जीने की निवृत्ति कहाँ मिलती है इसे? आहाहा!

कहते हैं कि **अनादि-निधन, वस्तु आप (आत्मा) है...** आहाहा! तत्त्व है, पदार्थ है, वस्तु है। वस्तु अर्थात्? इसमें ज्ञान-दर्शन-आनन्द अनन्त गुण बसते हैं। आहाहा! वस्तु है। वस्तु अर्थात्? यह वास्तु लेते हैं न? किसमें ले? वृक्ष के ऊपर या मकान में? इसी प्रकार यह वस्तु प्रभु है। वस्तु अर्थात्? ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, कर्तृत्व, भोक्ता ऐसे-ऐसे अनन्त गुण जो स्वभाव-शक्ति उसमें बसी हुई है। इसलिए उसे वस्तु कहा जाता है। समझ में आया? समझ में आया, यह विश्राम का शब्द है। बोले इसमें कोई-कोई वाक्य होवे न ऐसे। समझ में आया? एक लड़का कहता था, पाँच-छह वर्ष का। कहाँ मुम्बई न? समझ में आया (बोलते हैं) वे महाराज कहाँ हैं? सुनने आया होगा। बारम्बार आवे न? यह वाक्य का विश्राम है। समझ में आया? क्योंकि अनन्त भव में कभी समझा नहीं। समझ में आया? साधु हुआ, क्रियाकाण्ड किये, पंच महाव्रत पालन किये, यह सब जड़ की क्रिया और राग की क्रिया, वह आत्मा की नहीं। चैतन्यघन भगवान आत्मा पर से अत्यन्त पृथक्। आहाहा! इस आत्मा को वस्तु कहते हैं।

तथा... अब यह आया यह। **मूर्तिक...** आत्मा अमूर्त, तब यह (शरीर) मूर्त।

दिखता है न? वर्ण, गन्ध, यह जड़ वर्ण दिखता है यह तो। **मूर्तिक पुद्गलद्रव्यों का पिण्ड,...** जड़ रूपी पुद्गलों का पिण्ड **प्रसिद्ध ज्ञानादिरहित,...** दोनों में प्रसिद्ध रखा है। उसमें था न? भाई! **प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक,...** यह **प्रसिद्ध ज्ञानादिरहित,...** प्रसिद्ध अर्थात् उसमें ज्ञान कहाँ है? इसे है ज्ञान इसमें? यह तो जड़ है।

नवीन जिनका संयोग हुआ है,... दूसरी गति में से आया तब इस शरीर का नया संयोग हुआ है। दूसरी गति में से आया न यहाँ? तब आत्मा को पुराना शरीर छूट गया। यह दूसरा संयोग नया हुआ। आहाहा! अभी पुनर्जन्म है, भटकता है, इसका भी ठिकाना नहीं। लो, तब पुनर्जन्म है। लो, मान ले नहीं। वस्तु है। अनादि अनन्त वस्तु है। वह नये-नये शरीर के संयोग धारण करके, धारण अर्थात् सम्बन्ध में आकर चौरासी में भटकता है। समझ में आया? यह कहते हैं।

नवीन जिनका संयोग हुआ है,... अर्थात् क्या कहते हैं? कि अन्दर आत्मा जो है, उसमें तो ज्ञान-दर्शन-आनन्द नवीन नहीं। वह तो वस्तुमय है। परन्तु इस शरीर का तो नया संयोग हुआ है। माता के गर्भ में आया दूसरे भव में से। समझ में आया? वीर्य का बिन्दु और ऋतु का बिन्दु दो इकट्ठे होकर उसमें उपजा, दूसरे में से आकर। आहाहा! शास्त्र में सब कथन है। सात दिन में यह होता है, पहले बिन्दु आवे, फिर सात दिन में जरा... होता है ... फिर महीने बाद जरा अवयव होते हैं। ऐसे करते-करते नौ महीने में शरीर का अवतार होता है, इस देह का। तब उसे ऐसा होता है कि मैं जन्मा। तू जन्मा? यह तो शरीर का संयोग नया हुआ। शरीर की उत्पत्ति हुई संयोग में। तेरी उत्पत्ति है उसमें? यह भी कहाँ खबर है? ऐसे का ऐसे अन्ध-अन्ध। अनादि से चैतन्य की जाति को जाने बिना अन्धा अन्ध पलाय (अर्थात्) अन्धा दिखलाये और अन्धा चले। गिरे खड्डे में। इसी प्रकार चैतन्य के भान बिना और करानेवाले भी यह कहे, यह करो... यह करो... यह करो। परन्तु चैतन्य कौन है, इसके ज्ञान बिना यह अन्धकार में भटक रहा है। आहाहा!

नवीन जिनका संयोग हुआ है, ऐसे शरीरादि... शरीर, वाणी, मन **पुद्गल, अपने से पर हैं; इन दोनों के संयोगरूप नाना प्रकार की मनुष्य...** नाना अर्थात् अनेक। **नाना**

प्रकार की मनुष्य-तिर्यञ्चादि पर्यायें होती हैं... कीड़ी, मकोड़ा, हाथी, यह सब देखो न! शरीर ऐसे हों नये-नये। आत्मा तो है, वह है अनादि का। भान नहीं होता, इसलिए भ्रमणा में नये पाप बाँधकर ऐसे शरीर नये-नये करता आता है। द्रव्यलिंगी साधु भी अनन्त बार हुआ है। नग्न मुनि पंच महाव्रतधारी। परन्तु वह पंच महाव्रत तो विकल्प है, राग है, आस्रव है। उसे इसने धर्म माना था। ऐसे वेश अनन्त बार धारण किये।

वहाँ तो ऐसी बात चलती थी कि ऐसे द्रव्यलिंग इतनी बार धारण किये कि द्रव्यलिंग से मरकर प्रत्येक क्षेत्र में अनन्त बार जन्मा और मरा है, बापू! आहाहा! तूने कोई क्षेत्र बाकी नहीं रखा। चौदह ब्रह्माण्ड में सर्वत्र एक-एक जगह अनन्त बार अवतरित हुआ और अनन्त बार वहाँ मरा। यह भ्रमणा-मिथ्यात्व के कारण। आहाहा! जो चीज़ है, उसके भान बिना जहाँ-तहाँ मान बैठा। आहाहा! दया की पर्याय दया के भाव आये तो कहे - मैंने धर्म किया। दया का भाव तो राग है। आहाहा! राग है, वह तो हिंसा है। ऐई! अपने स्वरूप का अस्तित्व जो है पूर्णानन्द, उसमें यह राग है, वह तो शान्ति का घात करता है। आहाहा! उसे अपना स्वरूप माना।

अपने से पर हैं; इन दोनों के संयोगरूप नाना प्रकार की मनुष्य-तिर्यञ्चादि पर्यायें होती हैं—यह मूढ़ जीव, उन पर्यायों में अहंबुद्धि धारण कर रहा है;... इस प्रकार अहं जो चाहिए अन्दर पूर्णानन्दस्वरूप में अहं वहाँ चाहिए, उसके बदले यहाँ 'मैं' ऐसा मान रहा है। **स्व-पर का भेद नहीं कर सकता।** राग और शरीर—दोनों भिन्न चीज़ है। भगवान भिन्न चीज़ है। भगवान अर्थात् आत्मा। आचार्यों ने भगवानरूप से बुलाया है। ७२ गाथा में। भगवान आत्मा। आहाहा! पामर को प्रभुरूप से बुलाया। उस रूप से नहीं। ७२ गाथा में ऐसा आता है, समयसार। भगवान आत्मा...! आहाहा!

पुण्य और पाप के भाव, वे अशुचि हैं। पुण्य—शुभ-अशुभभाव, वह अशुचि है, मैल है। भगवान आत्मा निर्मलानन्द है, ऐसा उसमें आता है। बहुत बार कहा गया है। यहाँ तो ४० वर्ष हुए। यह तो ४०वाँ वर्ष चलता है। फाल्गुन कृष्ण तीज को यहाँ ४० पूरे होंगे। आहाहा! समयसार १७ बार वाँचन हो गया है। वहाँ कहा है कि प्रभु! तू कौन है? शरीर, वाणी, मन तो तू नहीं। परन्तु अन्दर शुभ-अशुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा

का विकल्प उठे, वह भी अशुचि है, मैल है। और यह कमाने का, भोग का, कमाने का, ब्याज का भाव-पाप उपजे, वह पापभाव भी मैल है। वह अशुचि है। तब भगवान आत्मा निर्मलानन्द है। ऐसा लिया है। आहाहा! क्या कहे? एक व्यक्ति को भगवान कहने पर अरे! भगवान आत्मा! भाईसाहेब! हम तो पामर हैं। अब सुन न! भगवान होगा, वह भगवानपना आयेगा कहाँ से? सिद्ध हुए न भगवान? णमो सिद्धाणं। वे कहाँ से हुए? बाहर से हुए हैं? समझ में आया? आहाहा!

चौसठ पहरी पीपर में चरपराहट भरी है। छोटी पीपर। वह छोटी पीपर नहीं आती? छोटी पीपर कद में छोटी दिखती है और रंग में काली दिखती है, परन्तु अन्दर में चौसठ पहरी चरपराहट / चरपराई पड़ी है। घोंटते हैं न? घूंटकर बाहर आवे चौंसठ पहरी, वह कहाँ से आती है? पत्थर में से आती है? अन्दर है? इतनी छोटी, कद में छोटी, रंग में काली, तथापि उसमें चौसठ पहरी (चरपराहट भरी है)। चौसठ पहरी समझ में आता है? यह चौसठ पैसे का रुपया कहलाता था न। अभी तक तो? अब तुम्हारे सौ पैसे का रुपया हुआ। इसी प्रकार चौसठ पहर घूंटे, तब उसकी चरपराहट जो अन्दर है, वह बाहर आती है। उसमें है। एक बार तो चौसठ पहरी रुपया-रुपया पूरा चरपराई... चरपराई अर्थात् चरपरा रस है और हरा रंग है अन्दर। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा में पूरा-पूरा आनन्द और ज्ञान भरा है। अरे.. अरे! कैसे जँचे? समझ में आया? चौसठ पहर कहा न? चौसठ पैसा, सोलह-सोलह आना। रुपया। पूरा रस भरा है। इसी प्रकार भगवान आत्मा, पूर्ण आनन्द पड़ा है, भाई! इसे खबर नहीं। आहाहा! इस आत्मा को और इस शरीर को दोनों को एक मानता है, ऐसा कहते हैं। है न? **स्व-पर का भेद नहीं कर सकता।**

जो पर्यायें प्राप्त की हों,... पर्याय अर्थात् शरीर। **उसी में अपनापन मानता है;...** स्त्री का शरीर पाया तो कहे मैं स्त्री। पावैया-हिंजड़ा का शरीर मिले। यह हिंजड़े होते हैं न पावैया? तो कहे, हम हिंजड़े। अरे! आहाहा! बालक का शरीर तो कहे हम बालक हैं। बापू! वह तो शरीर की दशा है, भाई! वह तेरी चीज़ नहीं, तू ऐसा नहीं, तुझमें वह नहीं, इसमें वह नहीं, उसमें तू नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

तथा उस पर्याय में भी जो ज्ञानादि गुण हैं,... शरीर की पर्याय जहाँ-जहाँ भले हो, वहाँ **ज्ञानादि गुण हैं, वे तो अपने गुण हैं और रागादि हैं, वे...** पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं—दया, दान, व्रत, काम, क्रोध, यह आमदनी करना, कमाना, दुकान में बैठकर गद्दी पर, ऐसा करो... ऐसा करो... यह सब राग पापराग है। ...भाई! सत्य होगा यह? ... **रागादि हैं, वे अपने को कर्मनिमित्त से औपाधिकभाव हुए हैं...** पुण्य-पाप का भाव, वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं है। कर्म के संग से उत्पन्न हुई मलिनदशा है। आहाहा!

तथा वर्णादिक हैं,... इस शरीर के रंग आदि। **परमाणुओं का नाना प्रकार पलटना होता है,...** रोग हो, रूपवान हो, जीर्ण हो, **वे सर्व पुद्गल की अवस्थाएँ हैं,...** जड़ की। **किन्तु उन सबको यह जीव अपना स्वरूप जानता है।** ज्ञान भी मैं, राग भी मैं, शरीर की अवस्था भी मैं। खिंचड़ा किया है, कहते हैं। समझ में आया? यह टोडरमलजी ने लिखा है। **किन्तु उन सबको यह जीव अपना स्वरूप जानता है। उसको स्वभाव-परभाव का विवेक नहीं हो सकता।** इसलिए स्वभाव—स्व-भाव। स्व अर्थात् अपना आनन्द और ज्ञानभाव और परभाव—पुण्य-पाप के भाव और शरीरादि के परभाव, दोनों का विवेक नहीं करता। क्योंकि पर को अपना माना, इसलिए पर से भिन्न ज्ञान करता नहीं। आहाहा! यह सब बड़े एम.ए. पढ़े हुए हों, एल.एल.बी. के पूंछड़े लगाये हों। वह भिन्न होगा? एल.एल.बी. की, एम.ए. की कोई कीमत रही नहीं अब। आहाहा!

कहते हैं कि ऐसी चीज़ जो है न? जहाँ-जहाँ पर्याय शरीर की पावे, वहाँ-वहाँ शरीर की अवस्था पुद्गल की, रोगादि हों जड़ की, बोलना हो, वह जड़ का और स्वयं भगवान ज्ञानानन्दस्वभाव भिन्न है। तथापि ज्ञानस्वभाव को, दया, दान के विकल्प को और देह की अवस्था को। तीनों को अपनी मानता है। आहाहा! इसका नाम मिथ्यादृष्टि जीव। जिसकी दृष्टि असत्य और झूठी है, वह ऐसा मानता है। और उस झूठ का फल चार गति में भटकने का है। आहाहा! समझ में आया?

श्लोक - १०

स्वदेहे एवमध्यसायं कुर्वाणो बहिरात्मा परदेहे कथंभूतं करोतीत्याह -

***स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा परदेहमचेतनम्।**
परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वेनाध्यवस्यति॥ १०॥

व्यापारव्याहाराकारादिना स्वदेहसदृशं परदेहं दृष्ट्वा। कथम्भूतं? परात्मनाऽधिष्ठितं कर्मवशात्स्वीकृतं अचेतनं चेतनेन-संगतं मूढो बहिरात्मा परत्वेन परात्मत्वेन अध्यवस्यति॥१०॥

स्वदेह में ऐसा अध्यवसाय करनेवाला बहिरात्मा, परदेह में कैसा अध्यवसाय करता है? — वह कहते हैं —

जैसे निज की देह में, आत्म-कल्पना होय।
वैसे ही पर-देह में, चेतनता संजोय॥१०॥

अन्वयार्थ **- (मूढः) अज्ञानी बहिरात्मा, (परात्माधिष्ठितं) अन्य के आत्मा के साथ रहनेवाले, (अचेतनं) अचेतन—चेतनारहित, (परदेहं) दूसरे के शरीर को, (स्वदेह सदृशं) अपने शरीर समान (दृष्ट्वा) देखकर, (परत्वेन) अन्य के आत्मारूप से, (अध्यवस्यति) मानता है।**

टीका **- व्यापार, व्याहार (वाणी-वचन) आकारादि द्वारा परदेह को अपने देहसमान देखकर; कैसा (देखकर)? कर्मवशात् अन्य के आत्मा से अधिष्ठित-स्वीकृत अचेतन (पर के देह को) चेतनायुक्त देखकर, बहिरात्मा उसे (देह को) परपने रूप से अर्थात् पर के आत्मारूप मानता है।**

---

* **णियदेहसरिच्छं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण। अच्चेयणं पि गहिय झाइज्जइ परमभावेण॥**

अर्थात् मिथ्यादृष्टि पुरुष, अपनी देह के समान दूसरे की देह को देख करके यह देह अचेतन है, तो भी मिथ्याभाव से आत्मभाव द्वारा बड़ा यत्न करके पर की आत्मा ध्याता है अर्थात् समझता है।

(-श्री मोक्षप्राभृत, गाथा ९, कुन्दकुन्दाचार्यः)

स्वशरीरमिवान्विध्य पराङ्गं च्युतचेतनम्। परमात्मानमज्ञानी परबुद्धयाऽप्यवस्यति॥

अर्थात् तथा वही बहिरात्मा अज्ञानी, जिस प्रकार अपने शरीर को आत्मा जानता है, उसी प्रकार पर के अचेतन देह को देखकर पर का आत्मा मानता है अर्थात् उसको पर की बुद्धि से निश्चय करता है।

(-श्री ज्ञानार्णव, गाथा ३२-१५, शुभचन्द्रः)

भावार्थ - जिस प्रकार बहिरात्मा अपने शरीर को, अपना आत्मा मानता है; उसी प्रकार अन्य के (स्त्री, पुत्र, मित्रादि के) अचेतन शरीर को, उनका आत्मा मानता है।

विशेष स्पष्टीकरण -

जैसे - अपने शरीर का नाश होने पर, बहिरात्मा अपना नाश समझता है; वैसे ही स्त्री, पुत्र, मित्रादिक के शरीर का नाश होने पर, उनके आत्मा का नाश समझता है; इस प्रकार वह अपने शरीर में आत्मबुद्धि-आत्मकल्पना करके दुःखी होता है और अन्य भी शरीर की प्रतिकूलता के कारण दुःखी होते हैं — ऐसा मानता है॥१०॥

श्लोक - १० पर प्रवचन

स्वदेह में ऐसा अध्यवसाय करनेवाला बहिरात्मा, परदेह में कैसा अध्यवसाय करता है? वह कहते हैं— अब यह जरा लेंगे। क्या कहते हैं? कि इस देहादि को अपना माना, ऐसा ही स्त्री, पुत्र, परिवार की जो देह है, वह देह भी उसका—आत्मा का है, ऐसा यह मानता है। **स्वदेह में ऐसा अध्यवसाय...** अध्यवसाय अर्थात् निर्णय करता है, ऐसे **बहिरात्मा, परदेह में...** भी ऐसा अध्यवसाय करता है। यह उसका शरीर, यह स्त्री का शरीर, यह पुत्र का शरीर, यह .... इस शरीर को ही आत्मा मानता है। आहाहा! क्योंकि उसे पहिचान तो आँख से शरीर की है। उसका आत्मा जो है, उसका तो ज्ञान का भान नहीं इसे। आहाहा! समझ में आया? यह दसवीं गाथा है।

स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा परदेहमचेतनम्।
परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वेनाध्यवस्यति॥ १०॥

आहाहा! पहले अन्वयार्थ लेते हैं।

अन्वयार्थ - अज्ञानी बहिरात्मा,... मूढ़ की व्याख्या। **'परात्माधिष्ठितं' अन्य के आत्मा के साथ रहनेवाले, अचेतन—चेतनारहित, दूसरे के शरीर को, अपने शरीर समान देखकर,...** अपने शरीर समान दूसरों को देखकर, यह शरीर मेरा ऐसे, वह शरीर भी उसके आत्मा का है। ऐसे शरीर को ही आत्मा मानता है। आहाहा! बात तो सच्ची है। स्त्री-पुत्र को पहिचाने तो शरीर को ही पहिचानता है न। उनका आत्मा क्या है, यह कहाँ

(खबर है)। हें, मोहनलालजी! आत्मा कौन है अन्दर (इसकी खबर नहीं)। यह मेरी स्त्री और यह मेरा पुत्र, यह मेरे मकान। आहाहा! उसका आत्मा, अपने शरीर को जैसे स्वयं अपना मानता है, वैसे दूसरे के शरीर को भी वह आत्मा ही मानता है। उसका शरीर है, वह उसके आत्मा का है। आहाहा! बात तो बहुत अच्छी, समझ में आये ऐसी यह बात है। नौतमभाई! परन्तु कहाँ फँस गया है।

अन्य के आत्मारूप से, मानता है। यह दूसरे का आत्मा, ऐसा। यह शरीर उसका है और यह दूसरे का आत्मा, वह शरीर। आहाहा! उसका भगवान आत्मा अन्दर भिन्न है। शरीर तो अन्दर खोली एक भिन्न चीज़ है यह तो। म्यान और तलवार दोनों भिन्न चीज़ है। शरीर तो म्यान है और तलवार भगवान अन्दर रहा हुआ भिन्न चीज़ है। परन्तु म्यान को देखकर ही यह मानता है कि यह तलवार है। समझ में आया? आहाहा! शरीर, वाणी, मन की दशा जो अपनी मानता है, वह उसे आत्मा मानता है। उसी प्रकार पर के शरीर को ही (आत्मा मानता है)। स्त्री का, पुत्रों का, परिवार का, अरे! नौकरों का उनका शरीर, वह सब आत्मा। आहाहा!

टीका - व्यापार, व्याहार (वाणी-वचन) आकारादि द्वारा परदेह को... पर का व्यापार देहादि का **अपने देहसमान देखकर; कैसा (देखकर) ? कर्मवशात् अन्य के आत्मा से अधिष्ठित-स्वीकृत अचेतन (पर के देह को) चेतनायुक्त देखकर,...** चेतनायुक्त देखकर। यह सचेत वनस्पति नहीं कहते? सचेत वनस्पति। परन्तु वनस्पति जड़ शरीर है और वह चेतन तो भिन्न चीज़ है। आता है न?...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)